प्रथम अध्याय

धर्मसूत्र : एक सामान्य परिचय

भारतीय संस्कृति तथा धर्म का मूल स्रोत वेद है। आचार्य बलदेव उपाध्याय के अनुसार "भारत की धार्मिकता में जो कुछ निष्ठा देखी जाती है उसका मूल वेद ही है।"[1] डॉ0 कुवंर लाल जैन शिष्य व निरुक्त भूमिका के अनुसार "वैदिक वाङ्मय संसार का प्राचीनतम साहित्य है, जिसे पाश्चात्य तथा भारतीय विद्वान् एकमत होकर स्वीकार करते हैं।"[2] आर्य जाति की सभ्यता और संस्कृति तथा समाज एवं धर्म को जानने का एकमात्र साधन वेद ही है।[3] वेद अनन्त ज्ञान राशि के भाण्डार माने जाते हैं। विविध प्रकार की सांस्कृतिक, धार्मिक, दार्शनिक अथवा सामाजिक धाराओं के प्रसूत होने के कारण इसे अक्षय्य स्रोत भी कहा गया है।

काल द्रष्टा महर्षियों ने अपने प्रतिभापूर्ण चक्षुओं के द्वारा 'अन्तर्हृदा मनसा पूयमानः'[4] की परिस्थितियों में वेद मन्त्रों को व्यक्त किया। स्मृति तथा पुराणों में वेद की पर्याप्त प्रशंसा उपलब्ध होती है। अतः इतिहास व पुराण के अनुशीलन द्वारा वेद का ज्ञान होता है।[5] वेद को श्रुति भी कहा जाता है। 'श्रूयते इति श्रुतिः' अर्थात् गुरू शिष्य परम्परा के

---

1 सं0 सा0 का इति0 (आचार्य बलदेव उपाध्याय), षष्ठ संस्करण, पृ0 26

2 (क) वै0 सां0 का इति0 पृ0 7

(ख) निरुक्त भूमिका महामहोपाध्याय श्री पण्डित छज्जू राम शास्त्री व विद्यासागर, तृ0 संस्करण, 1973, पृ0 5

3 सं0 सा0 का इति0, प0 बलदेव उपाध्याय, षष्ठ संस्करण, पृ0 26

4 ऋग्वेद 4.58.6

5 (क) इतिहास पुराणाभ्यां वेदं समुपवृंह्येत्।
विभेत्यल्पश्रुताद् वेदो मामयं प्रहरिष्यति।। निरुक्त भूमि0, पृ0 19

(ख) महा0 भा0 आदि प0 1.267

अनुसार जो ज्ञान सुना जाता है उसे श्रुति कहते हैं।[1] वेद के अनेक पर्यायवाची पद मिलते हैं यथा श्रुति, ब्रह्म मन्त्र, निगम, आम्नाय इत्यादि और धर्मसूत्र स्मृति ग्रन्थ हैं।'[2]

प्राचीन भारतीय परम्परा के अनुसार वेद सर्वप्रथम ऋषियों के हृदय में उतरे थे। लोक के हित के लिए परमात्मा ने इन वेदों का प्रकाश किया था, स्वयं वेद इस बात के साक्षी हैं कि वेद उसी परमात्मा की वाणी है।[3] वेद वाक् दैवी वाक् है। यह वाक् मानव की उत्पत्ति से बहुत पूर्व अन्तरिक्षस्थ तथा द्युलोस्थ देवों और ऋषियों अर्थात् ईश्वर की भौतिक विभूतियों द्वारा प्रकट हो चुकी थी। स्वं0 पं0 भगवद्दत्त के अनुसार "ओम्, अथ,व्याहृतियाँ और मन्त्र हिरण्यगर्भ आदि से तन्मात्रा रूप वागिन्द्रिय द्वारा उचारे जा चुके थे। वह वाक् क्षीण नहीं हुई, परम व्योम आकाश में स्थिर रही। मानव–सृष्टि के आरम्भ में जब ऋषियों ने आदि शरीर धारण किए तो वह दैवी वाक् ईश्वर प्रेरणा से उनमें प्रविष्ट हुई। उसे उन्होंने सुना इस कारण वेद वाक् का एक नाम श्रुति है।[4] ऋषियों के हृदय में प्रविष्ट होने व असीम, अप्रज्ञात से निकलने की बात की पुष्टी चितरंजन दयाल भिमवाल ने "यजुर्वेद भाष्य में इन्द्र एवं मरुत्" नामक ग्रन्थ में भी की है।[5]

आपस्तम्ब ने 'यज्ञ परिभाषा' में स्पष्ट रूप से इस बात का उल्लेख किया है कि 'वेद' शब्द का व्यवहार मन्त्र और ब्राह्मण दोनों के लिए होता है।[6]

'वेद' शब्द विद् धातु से 'करण' व 'अधिकरण' कारकों में 'घञ्' प्रत्यय लगाने से बना है। 'विद् धातु चार अर्थों में प्राप्त होती है। जैसे 'विद्' 'ज्ञाने सत्तायांश्च', 'विदलृ' लाभे',

---

1 वै0 सं0 सा0 इति0 कुवंर लाल जैन, पृ0 1

2 'श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रं तु वैस्मृतिः।' मनु स्मृ0 2/10

3 तस्मात्–सर्वहुतः इत्यादि यजुर्वेद का सुबोध भाष्य अध्याय 31, श्लोक 7 पृ0 508

4 वै0 वा0 का इति 0 स्व0 पं0 भगवद्दत्त प्रथम संस्करण 1978 पृ0 1

5 'तामन्विदन्नृषिषु प्रविष्टाम्' ऋग्वेद 10.71.3 यजुर्वेद भा0 'इन्द्र एवं मरुत्' चित्तरञ्जन दयाल भिमवाल प्रथम संस्करण 1993, पृ0 11

6 "मन्त्र ब्राह्मणयोर्वेदनामन्धेयम्" आ0 यज्ञ परि0 1.1.31

'विद्' विचारणे च, इन धातुओं से 'हलश्चेति' सूत्र से करण एवं अधिकरण में 'घञ्' करने से वेद शब्द निष्पन्न होता है।[1]

जिस से लोग ज्ञान प्राप्त करते हैं वह ऋग् आदि वेद है।[2] बौधायन् गृह्य सूत्र में भी इसका उल्लेख प्राप्त होता है, जहां कहा गया है कि मन्त्र और ब्राह्मण को वेद कहा जाता है।[3]

इस ज्ञान की यह श्रुति परम्परा काल क्रम से खण्डित होती जा रही थी। अतः इस वाङ्मय के सम्यक् ज्ञान के लिए यह आवश्यक समझा गया कि इस ज्ञान को बोधगम्य करने के लिए एक ऐसी परिपाटी का निर्माण किया जाए जो सरल और परिपूर्ण भी हो। वैदिक वाङ्मय की इस आवश्यकता को वेदाङ्ग साहित्य ने पूर्ण किया।

'जब वैदिक साहित्य की जटिलता एवं दुरूह्तताबढ़ गई तब उसे सुबोध बनाने के लिए नवीन सूत्र साहित्य की रचना की गई जिसे वेदाङ्ग इस नाम से पुकारा जाता है।'[4] वेदों के सम्यक् ज्ञान के लिए इसके छः अङ्गों का ज्ञान आवश्यक है। चरण-व्यूह के अनुसार-शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्यौतिष[5] इसके अङ्ग हैं। पाणिनीय शिक्षा[6] में छः वेदाङ्गों को वेद के अङ्ग बताया गया है। 'इन छः वेदाङ्गों' का उल्लेख

---

1 "विन्दति जानन्ति विद्यन्ते भवन्ति विन्दन्ति विचारयन्ति सर्वे
मनुष्याः सर्वाः सत्य विद्या यैयेर्षुवा तथा विद्वांश्च भविन्त
ते वेदाः।" ऋग्वेद भा0 भूमि0 'स्वामी दयानन्द सरस्वती' पृ0 25

2 (वेदः) वेत्ति चराचरं जगत् स जगदीश्वरः,
विदन्ति येन स ऋग्वेदादिर्वा।।। यजुर्वेदभाष्य (दयानन्द) 2.21

3 'मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्
मन्त्रब्राह्मणं वेदइत्याचक्षते। बौ0 गृ0 सू0 1.2.6.2

4 सं0 वा0 का वि0 इति0 डॉ0 सूर्यकान्त पृ0 82

5 शिक्षा कल्पोऽथ व्याकरणं निरुक्तं छन्दसां चयः।
ज्योतिषामयनं चैव वेदाङ्गानि षडेव तु।। वही सं0 वा0 का वि0 इति0 डॉ0 सूर्यकान्त, पृ0 82

6 पाणिनीय शिक्षा 41–42

'गोपथ ब्राह्मण' 'आपस्तम्बधर्मसूत्र', 'बौधायनधर्मसूत्र', गौतमधर्मसूत्र', तथा 'रामायण' आदि में मिलता है।'[1]

वेदाङ्ग शब्द वेद एवं अङ्ग इन दो शब्दों के मेल से बना है। अङ्ग शब्द का व्युत्पत्तिपरक अर्थ 'अङ्ग्यन्ते ज्ञायन्ते अमीभिरिति अङ्गानि' का तात्पर्य है कि जिसके द्वारा वास्तविक अर्थ यानि वस्तुतत्त्व को जानने में सहायता मिले वही अङ्ग है।[2] अङ्ग शब्द का निर्वचन मूलक अर्थ भी यही है–

"अङ्ग्यन्ते ज्ञायन्ते एभिः इति अङ्गानि।'[3]

आचार्य बलदेव उपाध्याय के अनुसार "वैदिक मन्त्रों का शुद्ध एवं उचित उच्चारण के लिए शिक्षा की कर्मकाण्ड तथा यज्ञिय अनुष्ठानों के लिए कल्प की, शब्द रचना एवं रूपों के ज्ञान के लिए व्याकरण की, अर्थज्ञान के लिए शब्दों के निर्वचन हेतु निरुक्त की, वैदिक शब्दों के ज्ञान के लिए छन्द की, अनुष्ठानों के उचित काल निर्धारण के लिए ज्यौतिष की आवश्यकता स्पष्ट है।"[4] इन्हें वैदिक उपकारक भी कहते हैं।[5]

वैदिक कर्मकाण्ड तथा यज्ञिय अनुष्ठानों को क्रमबद्ध बनाने एवं सूत्रात्मक शैली में संक्षिप्त करने के लिए कल्प साहित्य की रचना की गई।[6] धर्मसूत्र कल्प के अन्तर्गत आते हैं।[7]कल्प का अर्थ है 'वेद में विहित कर्मों का क्रम पूर्वक व्यवस्थित कल्पना करने वाला शास्त्र।[8] वेदाङ्ग इतना महत्त्वपूर्ण है कि इसके विषय में आचार्य कुमारि·ल भट्ट ने भी कहा

---

1 गो0 ब्रा0 1.27 आ0 ध0 सू0 2.4.10, बौ0 ध0 सू0 8.142, गौ0 ध0 सू0 1.8.85 रामायण बा0 का 7.15
2 सं0 वा0 का वृहद् इति0 आ0 बलदेव उपाध्याय, पृ0 9
3 सं0 वा0 का वृहद् इति0 आ0 बलदेव उपाध्याय, पृ0 30
4 सं0 वा0 का इति0, आ0 बलदेव उपाध्याय, अष्टम संस्करण, पृ0 82
5 सं0 वा0 का इति0, आ0 बलदेव उपाध्याय, अष्टम संस्करण, पृ0 292
6 सं0 वा0 का इति डॉ0 सूर्य कान्त पृ0 84
7 आ0 ध0 सू0 प्रस्ता0 पृ0 12 चतुर्थ संस्करण संवत् 2056
8 कल्पो वेद विहितानां कर्मणामनुर्पूव्येण कल्पना शास्त्रम्
विष्णु मित्र ऋग्वेद–प्रातिशाख्य की वर्गद्वय वृत्ति, पृ0 13

है कि वेद की सहायता के बिना यज्ञ तो किए जा सकते हैं, किन्तु इसकी सहायता के बिना ब्राह्मण या वेद के याज्ञिक विधानों को नहीं किया जा सकता।[1] यज्ञ-यागादि तथा विवाहोपनयन आदि कर्मों का विशिष्ट प्रतिपादन जिन ग्रन्थों में किया गया है। उन्हीं का क्रमबद्ध वर्णन करने वाले सूत्र ग्रन्थों का सामान्य अभिधान कल्प हैं। कल्प को सब से पूर्ण वेदाङ्ग माना जाता है।[2] इसके अन्तर्गत सूत्रों का विशाल भाण्डार भरा पड़ा है।[3]

इन सूत्रों के महत्त्व के विषय में डॉ0 मैक्समूलर ने भी कहा है –'ये साहित्य के नये युग के प्रकाशक ही नहीं अपितु भारत के धार्मिक एवं साहित्यिक जीवन के एक नये प्रयोजन के सूचक भी हैं।'[4] कल्प सूत्रों के महत्त्व के कारण ही इनके रचयिता स्वयं नई शाखाओं के संस्थापक बने और उनकी शाखा में उनके सूत्र का भी प्रधान स्थान हो गया तथा ब्राह्मण और वेद का महत्त्व कुछ सीमा तक कम हो गया।[5] यद्यपि सूत्र स्मृति को श्रुति नहीं कहा जा सकता तथापि शाखा से सूत्र भेद की बात को महादेव शास्त्री ने हिरण्यकेशि सूत्र की टीका में कहा है।[6] इन शाखाओं के भेद का एक कारण उनके स्वाध्याय का भेद भी है।[7]

ब्राह्मण काल के अनन्तर रचे गये ये ग्रन्थ वेद के विषय तथा अर्थ को समझने के लिए नितान्त उपयोगी हैं।[8] कल्प सूत्र दो प्रकार के हैं-श्रौत सूत्र तथा स्मार्तसूत्र। स्मार्तसूत्रों

---

1 "वेदादृतेऽपि कुर्वन्ति कल्पैः कर्माणि याज्ञिकाः।
न तु कल्पैर्विना केचिन्मन्त्र ब्राह्मणमात्रकात।।" वै0 सा0 का इति0, डॉ0 कुवंर लाल, पृ0 182

2 आ0 ध0 सू0 चतुर्थ संस्करण प्रस्ता0 पृ0 10

3 वही।

4 वही।

5 वही, पृ0 11

6 "तत्र कल्पसूत्रं प्रतिशाखं भिन्नमभिन्नमपि क्वचित्
शाख भेदेऽध्ययन भेदाद्वा सूत्रभेदाद्वा इत्यादि। आ0 ध0 सू0 प्रस्ता0 पृ0 11

7 वही।

8 सं0 सा0 का इति0 'ले0 बलदेव उपाध्याय' अष्टम संस्करण, नई दिल्ली 1968, पृ0 32

के दो भेद हैं गृह्यसूत्र तथा धर्मसूत्र। श्रौत शब्द का अर्थ है श्रुति 'वेद से सम्बद्ध यज्ञ–याग।[1] सूत्र शब्द का प्रसिद्ध एवं मूल अर्थसूत है।[2] जिन छोटे–छोटे अर्थ पूर्ण वाक्यों द्वारा विस्तृत अर्थों को उपस्थित करने का प्रयत्न किया जाता है, उन्हें सूत्र नाम से अभिहित किया जाता है।[3] वायु– पुराण के अनुसार सूत्र अल्पाक्षर, सन्देह रहित, सारगर्भित, व्यापक, निर्विघ्न तथा निर्दोष होना चाहिए।

'अल्पाक्षरमसंदिग्धं सारवद् विश्वतो मुखम्।
अथ्तोभ्यमनवद्यं च सूत्रं सूत्रो विदो विदुः।।[4]

डॉ0 सूर्यकान्त ने भी वैदिक विषयों की दुरूहता, रहस्यमयता एवं विपुलता इनके उद्‌भव का मुख्य कारण मानी। जिसका उद्देश्य था इस समग्र साहित्य के महत्त्वपूर्ण अंशों को कण्ठस्थ कर लेना।[5] जब ब्राह्मणों ने देखा कि उनके प्रभाव के प्रतिकूल बौद्धों का प्रभाव व्यापक होता जा रहा है तब उन लोगों ने ब्राह्मण धर्म की महत्ता और यज्ञ याग की विशिष्टता बतलाने के लिए एक सरल और सुबोध शैली सूत्रशैली बनाई।[6]

रमाकान्त शास्त्री के अनुसार "सूत्र साहित्य का निर्माण यज्ञ सम्पादन के लिए जो विधि विधान बनाए गए थे; उनकी रक्षा के उद्देश्य से ही हुआ था।"[7] 'मनुष्य के व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन के पथ का अनुलेखन ही धर्मसूत्रों का लक्ष्य है।'[8] सूत्र

---

1 सं0 सा0 का इति0 'ले0 बलदेव उपाध्याय' अष्टम संस्करण, नई दिल्ली 1968, पृ0 34

2 वामन शिवराम आप्टे, सं0 हि0 श0 को0 भाग–3, पृ0 1698

3 लघुनि सूचितार्थानि स्वल्पाक्षर पदानि च।
सर्वतः सारभूतानि सूत्राण्याहुर्मनिषिणः।। सं0 व्या0 ग0 परं आ0 पा0, पृ0 4

4 वायु पु0 59–142

5 सं0 वा0 वि0 इति0, पृ0 15

6 डॉ0 वाचस्पति गैरोला, सं0 सा0 स0 इति0, पृ0 88

7 डॉ0 रमाकान्त शास्त्री, वै0 वा0 इति0 पृ0 49

8 बौ0 ध0 सू0 प्रस्ता0, पृ0 9

शब्द का शाब्दिक अर्थ है धागा।[1] इसमें अल्पाक्षर अर्थ गर्भित वाक्यों को पिरोकर रखा जाता है। इन सूत्रों की संरचना में अनेक शताब्दियों के चिन्तन, मनन और अध्ययन का समय लगा।[2] पश्चिमी विद्वानों ने भी इन सूत्रों की शैली पर बहुत आलोचनात्मक ढंग से विचार किया। प्रो० माक्स म्यूल्लेर ने प्राचीन संस्कृत साहित्य का इतिहास नामक ग्रन्थ में सूत्र साहित्य के सन्दर्भ में लिखा है।[3] आचार्य ए० ए० मैकडोनल इस विषय में कहते हैं कि 'सूत्र' यह संज्ञा अपने असली स्वरूप एवं लक्ष्य तथा अत्यन्त संक्षिप्तता की ओर संकेत करती है। सूत्र शब्द का तात्पर्य 'डोरा' या संकेत है, और सूत्र गद्य में रचित है और शब्दों की रचना इतनी संतुलित है कि उनकी तुलना में सांकेतिक तार भी अधिक विस्तृत प्रतीत होते हैं। कई सूत्रों का तो बीज गणित जैसा रूप है।'[4]

सूत्र रचनाओं के बारे में कोलेब्रुक [5] ने भी इसी प्रकार का विचार व्यक्त किया है – उन्होंने सूत्रों के अपवाद बारे कहा हैं कि इसमें पारस्परिक सम्बन्ध के अभाव का दोष है। 'किन्तु धर्मसूत्रों की शैली इन जटिलताओं से मुक्त है उनमें पारिभाषिक शब्दावली का अभाव है और वे सीधे–सादे स्वतन्त्र वाक्य के समान हैं।'[6] यह बात अनेक धर्मसूत्रकारों ने

---

1 आ० ध० सू० प्रस्ता०, पृ० 9 चतुर्थ संस्करण संवत् 2056

2 वही।

3 वही। **"Every doctrine thus propounded whether grammar, metre, law or philosophy, is reduced to a mere skeleton. All the important points and joints of a system laid open with the greatest precision and clearness, but there is nothing in these works like connection or development of ideas." p. 37.**

4 संस्कृत साहित्य का इति० (ए० ए० मैकडोनल वैदिक युग) पृ० 29–30

5 Every apparent simplicity of the design vanishes in the perplexity of the structure. The endless pursuit of exceptions and limitations so disjoins the general precept, that the reader cannot keep in view their intended connection and mutual relation. He wonders in an intricate maze, and the clue to the labyrinth is continually slipping from his hands."

गौ० ध० सू०, भूमि० पृ० 3

6 बौ० ध० सू० प्रस्ता० पृ० 7

मानी है कि इन धर्मसूत्रों को श्रुति के अन्तर्गत नहीं माना जाता जैसे कि इसके पूर्ववर्ती साहित्य, संहिता और ब्राह्मणों को माना जाता है। धर्मसूत्र रचनाएं पौरुषेय रचनाएं हैं।[1] श्रुति के विपरीत स्मृति में न केवल सूत्र रचनाएं आती हैं, अपितु मनु, याज्ञवल्क्य, पाराशर आदि के श्लोकों में निबद्ध ग्रन्थ भी आते हैं जिन्हें स्पष्टतया स्मृति कहा गया है।[2] श्रुति से स्वतन्त्र रूप में स्मृति की प्रामाणिकता नहीं होती। जैसा कि कुमारिल ने कहा है।[3]

आपस्तम्बादि कल्प सूत्रकारों की विद्वत्समाज में महती प्रतिष्ठा थी, वे भी मन्त्रद्रष्टा ऋषियों के समान पूजित थे। "कोई भी अनृषि कल्पसूत्रकार नहीं हो सकता, कल्पसूत्रों की रचना भी मन्त्रद्रष्टा ऋषियों के समान ही प्रामाणिक हैं।'[4] कल्प सूत्र मुख्यतः चार प्रकार के हैं।[5]

1. **श्रौत सूत्र** – श्रौत–अग्नि से होने वाले बड़े यज्ञों का विवेचन करने वाले सूत्र हैं तथा ब्राह्मण ग्रन्थों में वर्णित हैं।

2. **गृह्य सूत्र** – गृह्य अग्नि से सम्पन्न होने वाले यागों का तथा उपनयन, विवाह, श्राद्ध आदि संस्कारों का विस्तृत वर्णन करने वाले सूत्र हैं।[6]

---

1 आ० ध० सू० सा० पृ० 10

2 गौ० ध० सू० भूमि० पृ० 4

3 पूर्व विज्ञान विषयं विज्ञानं स्मृतिरिहोच्यते
पूर्वज्ञानाद्विना तस्याः प्रामाण्यं नावधार्यते।। गौ० ध० सू० भूमि० पृ० 4

4 वै० सा० का इति० कुवंर लाल, पृ० 182

5 (क) वै० सा० स० 'आचार्य बलदेव उपाध्याय' तृतीय संस्करण 1967, पृ० 315
(ख) आ० ध० सू० डॉ० उमेश चन्द पाण्डेय प्रस्ता०, पृ० 11
(ग) गौ० ध० सू०, भूमि० पृ० 5
(घ) बौ० ध० सू०, प्रस्ता० पृ० 8

6 वै० वा० का इति०, श्री रमा कान्त शास्त्री, पृ० 51–52

3. **धर्मसूत्र** – चारों आश्रमों, चारों वर्णों के धार्मिक कर्त्तव्यों तथा राजा के कर्त्तव्यों का विशिष्ट प्रतिपादन करने वाले सूत्र हैं।[1]

4. **शुल्वसूत्र** – इनमें यज्ञ आदि कार्यों में वेदि–निर्माण की रीति का विशिष्ट रूप से प्रतिपादन है जो आर्यों के प्राचीन ज्यामिति सम्बन्धी कल्पनाओं तथा गणनाओं के प्रतिपादक होने से वैज्ञानिक महत्त्व के द्योतक हैं।[2]

धर्मसूत्र

कल्प के अविभाज्य अंग धर्मसूत्र हैं।[3] धर्मसूत्रों को स्मृति का मूल माना है। प्रायः जिन आचार्यों ने श्रौत सूत्र रचे उन्हीं ने गृह्य-सूत्र और धर्मसूत्र लिखे।[4] 'सामान्यतः वैदिक साहित्य के अन्य ग्रन्थों के समान धर्मसूत्र भी प्रत्येक शाखा के अलग–अलग होते हैं तथा कई शाखाओं के विशेष धर्मसूत्र उपलब्ध नहीं हैं।'[5]

इन धर्मसूत्रों में मानव–धर्म, समाज–धर्म, राजधर्म, एवं धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चतुर्वग का वर्णन है। ये सभी मानव–जीवन के आवश्यक अंग थे। धर्मसूत्रों में सामाजिक व्यवहार भोजन, वाणिज्य, आचार–विचार सभी जीवन के अंगों का वर्णन हैं। इसमें भक्ष्य–अभक्ष्य चातुर्वर्ण्य धर्म और चातुराश्रम्य का विस्तार से वधिान है।[6] वर्तमान समय में सभी शाखाओं के धर्मसूत्रों की अनुपलब्धि का कारण सम्पूर्ण वाङ्मय हमारे समक्ष अनुपलब्ध है जिसका एक बड़ा भाग काल कवलित हो गया तथा दूसरा कारण यह कि सभी

---

1 (क) वै0 सा0 एवं सं0 डॉ0 किरण कुमारी, पृ0 136

(ख) वै0 सा0 आ0 बलदेव उपाध्याय, पृ0 315

2 वही।

3 बै0 सा0 और सं0 आचार्य बलदेव उपाध्याय पृ0 325 तृ0 सं0 1967

4 वै0 सा0 का इति0 डॉ0 कुवंर लाल, पृ0 196

5 आ0 ध0 सू0 प्रस्ता0, पृ0 12

6 बौ0 ध0 सू0 प्रस्ता0 पृ0 17

शाखाओं ने पृथक्–पृथक् धर्मसूत्रों का प्रणयन ही नहीं किया।[1] कुमारिल भट्ट ने पूर्व मीमांसा में ऐसा संकेत दिया है कि विभिन्न शाखाओं में एक अद्भुत सहिष्णुता थी जिसके परिणामस्वरूप इन शाखाओं ने दूसरी शाखाओं के धर्मसूत्रों को अपना लिया।[2]

जिसके अनुसार सभी आर्यों के लिए सभी धर्मसूत्र और सभी गृह्यसूत्र मान्य हैं।[3] कल्पसूत्रों के रचयिता अपनी शाखाओं के नियमों का विधान करते हैं। किन्तु दूसरी शाखाओं के विकल्प नियमों का भी अनुसरण करते हैं।[4] परन्तु यह भी स्पष्ट रूप से कहा गया है कि कोई भी सूत्रकार अपनी ही शाखा से सन्तुष्ट न था।[5] कल्प सूत्र साहित्य के विषय में अनेकों भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानों ने अपने–अपने विचार व्यक्त किए हैं।

धर्मसूत्रकारों ने मानव–जीवन से सम्बन्धित प्रत्येक समस्या पर विचार करके अपनी व्यवस्था दी। जिससे कि मानव–जीवन व्यवस्थित रूप से चल सके। विश्वबन्धु ने धर्मसूत्र को समयाचारिक सूत्र कहा है।[6] आचार्य बलदेव उपाध्याय और डॉ0 हरि दत्त शास्त्री ने इन्हें आचार विधि प्रधान सूत्र बतलाया है।[7] डॉ0 बलदेव उपाध्याय तथा डॉ0 राम गोपाल केवल मात्र गृह्य सूत्रों से धर्मसूत्रों का घनिष्ठ सम्बन्ध मानते हैं।[8] विश्वबन्धु[9] का मत

---

1 सं0 वा0 का बृहद् इति0 वेदाङ्ग खण्ड प्रधान सम्पादक आचार्य बलदेव उपाध्याय, सम्पादक डॉ0 ओम प्रकाश पाण्डेय, पृ0 179

2 स्वशाखाविहितैश्चापि शाखान्तरगतान् विधीन्।
कल्पकारा निवध्नन्ति सर्वानेवं विकल्पितान्।।
स्वशाखोपसंहारो जैमिनेश्चापि सम्मतः।। कुमारिल भट्ट पूर्व मीमांसा 1.3.11

3 बौ0 ध0 सू0 प्रस्ता0, पृ0 9

4 आ0 ध0 सू0 प्रस्ता0, पृ0 12

5 न च सूत्रकाराणामपि कश्चित् स्वशाखोपसंहारमात्रेणावस्थितः। आ0 ध0 सू0 प्रस्ता0, पृ0 12

6 वै0 सा0, पृ0 239

7 वै0 सा0 सं0, पृ0 29, भार0 सा0 सं0 पृ0 148

8 वै0 सा0 सं0, पृ0 291

9 वै0 सा0 सं0, पृ0 240

है कि ये धर्मसूत्र भारत में कानून सम्बन्धी साहित्य के आदि ग्रन्थ हैं जिनमें अधिकतर धार्मिक और कुछ लौकिक व्यवहार सम्बन्धी नियम भी प्रस्तुत है।

इन धर्मसूत्रों में मानव धर्मसूत्र जिसके आधार पर कालान्तर में 'मनुस्मृतिः' का निर्माण हुआ किन्तु मानव धर्मसूत्र अभी तक उपलब्ध नहीं है। केवल बौधायन, आपस्तम्ब तथा हिरण्यकेशि के कल्पसूत्रों की उपलब्धि पूर्ण रूपेण होती है और इसीलिए इनके धर्मसूत्र भी मिलते हैं। कुमारिल भट्ट ने तन्त्रवार्तिक में भिन्न–भिन्न वेदों के धर्मसूत्रों का प्रामाणिक निर्देश किया है।[1] इन धर्मसूत्रों में प्राचीनतम ग्रन्थ गौतम धर्मसूत्र माना जाता है, जिसका सम्बन्ध कुमारिल के प्रामाण्य पर सामवेद से है।[2] हरदत्त ने व्याख्या से तथा आचार्य मस्करी ने भाष्य से इसके अर्थ को सरल तथा बोधगम्य बनाया है।[3]

धर्मसूत्र में विवाह से उत्पन्न पुत्रों के बीच सम्पत्ति के विभाजन का प्रश्न मुख्य है। दाय भाग से वञ्चना, स्त्रियों का पारतन्त्र्य, व्यभिचार के लिए प्रायश्चित्त, नियोग के नियम, गृहस्थ के नित्य तथा नैमित्तिक कर्त्तव्यों का वर्णन सब धर्मसूत्रों में नियमतः थोड़ी या अधिक मात्रा में आता है।

इस प्रकार वर्णाश्रम के विविध कर्त्तव्यों का प्रतिपादन करके इसके साथ पातक, महापातक, प्रायश्चित्त, भक्ष्याभक्ष्य, श्राद्ध, विवाह, और उनके निर्णय, ऋण, ब्याज़, जन्म–मृत्यु विषयक आशौच, स्त्री धर्म, व्यभिचार आदि सभी विषयों पर धर्मसूत्रों में विचार किया गया है। जिसका मानव जीवन में उपयोग है।[4] गौतमधर्मसूत्र में तो जाति उत्कर्ष व जाति अपकर्ष का सिद्धान्त भी वर्णित है।[5]

---

1 अपि चाङ्गानि वेदाश्च धर्मशास्त्रं च तुल्यवत्।
विद्या स्थानानि गण्यन्ते सर्वदा वेदवादिभिः।। तन्त्रवार्तिक(मीमांसा सूत्र) 1.3.11

2 सं0 वा0 का इति0 डॉ0 सूर्यकान्त, पृ0 79

3 ध0 शा0 का इति0, पृ0 10

4 सं0 वा0 का वृहद् इति0 वेदाङ्ग खण्ड, पृ0 183

5 गौ0 ध0 सू0 1.4.18–19

धर्मसूत्रों का उद्भव

सभी धर्मसूत्रकारों ने धार्मिक कर्त्तव्यों को सम्पन्न करने के लिए धर्मसूत्रों के अनुशीलन पर बल दिया है। ये साहित्य के नये युग के द्योतक ही नहीं बल्कि भारतीय साहित्यिक एवं धार्मिक जीवन के नये प्रयोजन के सूचक हैं।[1] इनका इतिहास यास्क[2] से भी पूर्ववर्ती था, जिसमें धर्म सम्बन्धी ग्रन्थ विद्यमान थे।

आचार्य बलदेव उपाध्याय ने इन्हें वर्णाश्रम–धर्म, व्यक्तिगत आचरण, राजा एवं प्रजा के कर्त्तव्य आदि का विधान करने वाले सूत्र कहा है।[3] डॉ0 राम गोपाल के मतानुसार जो विषय गृह्यसूत्रों में वर्णित हैं उनमें मुख्य उपनयन, अनध्याय, विवाह, श्राद्ध तथा पञ्चमहायज्ञ हैं।[4] ये धर्मसूत्र गृह्य श्रृंखला के रूप में ही उपलब्ध होते हैं।[5]

आर्यों के रीति–रिवाज़ वेदादि प्राचीन शास्त्रों पर आधृत थे, किन्तु सूत्र काल तक आते–आते इन रीति–रिवाज़ो में पर्याप्त परिवर्तन एवं प्रगति हो गई थी।[6] अतः इन सब को नियमबद्ध करने की आवश्यकता अनुभव की गई।

जटिल समस्याओं को दूर करने के लिए गहन विचार विमर्श पूर्वक सूत्र ग्रन्थों का सम्पादन किया गया।[7] कल्पसूत्रों के महत्त्व के कारण इनके रचयिता नई शाखाओं के संस्थापक बन गए तथा उनके सूत्र का उनकी शाखा में प्रधान स्थान हो गया।[8]

इन सूत्र ग्रन्थों ने इस बौद्धिक सम्पदा को, जो दीर्घकाल से चली आ रही थी, सुरक्षित रखा। यह तो विकास का एक क्रम था जो तात्कालिक परिस्थितियों के कारण

---

1 प्रो0 मैक्समूलर, बौ0 ध0 सू0 सू0 सा0 कल्प, पृ0 8

2 निरुक्त – अथैतां जाम्यारिक्थ प्रतिषेध उदाहरन्ति ज्येष्ठं पुत्रिकाया इत्येके। 3.4.5

3 सं0 वा0 का वृहद् इति0, पृ0 179

4 इ0 आ0 वें0 क0 सू0, पृ0 43

5 स0 वा0 का वृ0 इति0, पृ0 179

6 सं0 वा0 का वृ0 इति0, पृ0 179

7 सं0 वा0 का वृ0 इति0, पृ0 179

8 गौ0 ध0 सू0 भूमि0, पृ0 4

निरन्तर हो रहा था आगे चलकर यह विकास कार्य सूत्र ग्रन्थों में भी समयानुकूल परिवर्तन की दिशा को प्राप्त करता हुआ परवर्ती स्मृतियों के रूप में उत्पन्न हुआ। नई–नई समस्याएं फिर भी उत्पन्न होती रही, उनके समाधानार्थ स्मृतियों पर भी भाष्य एवं टीकाएं लिखी गई जिनके माध्यम से प्राचीन वचनों की नवीन व्याख्याएँ लिखी गई।[1] इस प्रकार अपने पूर्ववर्ती आधार को त्यागे बिना नूतन सिद्धान्तों तथा नियमों के अनुसार इन धर्मसूत्रों की उत्पत्ति हुई। डॉ0 हरिदत्त शास्त्री[2] धर्म से तात्पर्य Right duty law and religion custom usage, भी मानते हैं। इनके अनुसार ये धर्म ग्रन्थ धार्मिक तथा अधार्मिक दोनों प्रकार के थे। इन धर्मसूत्रों में चारों वर्णों तथा चारों आश्रमों से सम्बन्धित नियमों की व्यवस्था की गई है।[3]

अतः उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि धर्मसूत्रों में सब दैनदिन्दन जीवन के नियम तथा मानव –जीवन के आचार–विचार सम्बन्धी आवश्यक अङ्गों का वर्णन है। इनमें मरने के पश्चात् पितरों के निमित्त किए जाने वाले कर्मों का सविस्तार वर्णन किया गया है।[4] धर्मसूत्रों में यहाँ तक प्रतिबन्ध लगाया गया है कि विदेशी भाषाओं का अध्ययन और समुद्र–यात्रा को भी धर्माचरण के विरूद्ध माना गया है।[5] इस प्रकार से यह स्पष्ट कहा जा सकता है कि वैदिक साहित्य के विपुल दुर्गम और रहस्यमय होने के कारण उसको बोधगम्य करने की सुगमता के लिए सूत्रों की आवश्यकता हुई।

धर्मसूत्रों की संख्या

सूत्र साहित्य के अन्तर्गत धर्मसूत्र भी आते हैं। कल्प वेदाङ्ग में धर्मसूत्र तृतीय स्थान पर परिगणित किए गए हैं। प्रत्येक वैदिक शाखा का अपना एक स्वतन्त्र कल्पसूत्र

---

1 सा0 वा0 का वृ0 इति0, पृ0 179

2 भा0 सा0 स0, पृ0 148

3 वै0 सा0 और सं0 बलदेव उपाध्याय तृतीय संस्करण, पृ0 326

4 आ0 ध0 सू0 प्रस्ता0, पृ0 17

5 सं0 सा0 का सं0 इति0 डॉ0 गैरोला, पृ0 116

होता था। ये धर्मसूत्र कल्प के अविभाज्य अंग हैं।[1] पाश्चात्य विद्वान मैक्समूलर ने कल्प को नये युग का द्योतक, भारतीय साहित्यिक एवं धार्मिक जीवन में नए प्रयोजन का सूचक माना है।[2]

कई शाखाओं के विशिष्ट सूत्र साथ–साथ प्राप्त होते हैं। आश्वलायन, शांखायन तथा मानव शाखा के श्रौत सूत्र उपलब्ध होते हैं, किन्तु इनके धर्मसूत्र का अभाव है।[3] इन विभिन्न शाखाओं के धर्मसूत्रों में कुछ एक उपलब्ध होते हैं जिनमें बौधायन, आपस्तम्ब, हिरण्यकेशि की उपलब्धि पूर्ण रूप से होती है।[4]

वैदिक शाखाओं के समान धर्मसूत्र भी प्रत्येक शाखा का अलग होना चाहिए था परन्तु कई शाखाओं ने इनको बनाने की कोशिश नहीं की अपितु दूसरी शाखाओं के सूत्रों को ही स्वीकार कर लिया। जिससे सभी शाखाओं के धर्मसूत्र उपलब्ध नहीं होते।[5] उपलब्ध धर्मसूत्रों में गौतमधर्मसूत्र, आपस्तम्बधर्मसूत्र, वसिष्ठधर्मसूत्र, बौधायनधर्मसूत्र, हिरण्यकेशिधर्मसूत्र व विष्णुधर्मसूत्र हैं।

उत्तरकालीन धर्मसूत्रों में मनु याज्ञवल्क्य और नारद के नाम प्रसिद्ध हैं। प्रायः इन्हें स्मृति कहते हैं। ये भारतीय न्याय शास्त्र के प्राचीनतम स्रोत हैं। वेदों की स्वतः प्रमाण्यता को ये स्वीकार करते हैं तथा इनका जीवन के प्रति दृष्टिकोण धार्मिक है।[6]

व्यूह्लर के अनुसार सूत्र रचना से पूर्व भी पद्यात्मक रचना थी किन्तु वह नष्ट हो गई उनके अनुसार इस प्रकार के श्लोक स्मृति सहायक लोक प्रचलित पद्यों के अंश थे।

---

1 वै0 सा0 और सं0 आ0 बलदेव उपाध्याय, पृ0 325

2 Ancient Sanskrit Literature, p. 166

3 आ0 ध0 सू0 प्रस्ता0, पृ0 12

4 वै0 सा0 और सं0 वेदाङ्ग खण्ड आ0 बलदेव उप0 तृ0 सं0, पृ0 325

5 गौ0 ध0 सू0, भूमि0, पृ0 6

6 वै0 सा0 हंस राज अग्रवाल

[1]मैक्समूलर ने बलपूर्वक यह मत व्यक्त किया कि सभी पद्यात्मक धर्मशास्त्रों की रचना के बिना किसी अपवाद के प्राचीन सूत्र रचनाओं के आधार पर की गई।[2] यह भी स्पष्ट ही है कि धर्मग्रन्थ धर्मसूत्रों से भी पूर्व विद्यमान थे।[3] अतः इन धर्मसूत्रों का उल्लेख संक्षेपतः निम्नलिखित प्रकार से प्रस्तुत किया जा रहा है –

यजुर्वेदीय धर्मसूत्र

गौतमधर्मसूत्र

यह धर्मसूत्र सभी धर्मसूत्रों में प्राचीनतम माना जाता है।[4] इस धर्मसूत्र के रचयिता ऋषि गौतम माने जाते हैं।[5] यह केवल गद्य में है। इसमें श्लोकों का कोई उद्धरण नहीं दिया गया जबकि दूसरे धर्मसूत्रों में श्लोक का उद्धरण आ जाता है। इसकी प्राचीनता के कई प्रमाण है इसका उल्लेख बौधायनधर्मसूत्र में किया गया है।[6]

'चरण व्यूह' में निर्दिष्ट राणायनीय शाखा की नौ अवान्तर शाखाओं में गौतम अन्यतम हैं। गोभिल ने अपने गृह्यसूत्र में गौतम को उद्धृत किया है। गौतमधर्मसूत्र का निर्देश याज्ञवल्क्य कुमारिल, शंकराचार्य तथा मेधातिथि ने किया है और अनेक जगह इस बात की पुष्टि भी होती है कि बौधायन ने गौतमधर्मसूत्र से ही सामग्री ली।[7] इसी प्रकार

---

1 कुन्दन लाल शर्मा, वै0 वा0 का वृ0 इति0 (कल्पवृक्ष) 1989, पृ0 472

2 मैक्समूलर, दि0 ऐ0 सं0 लिट्रेचर पृ0 70 (वै0 वा0 का वृ0 इति0), पृ0 472

3 ध0 शा0 का इति0 प्रथम खण्ड, पृ0 8

4 वै0 सा0 और सं0, आ0 बलदेव उपाध्याय, पृ0 326,ध0 शा0 का इति0, पृ0 10

5 (क) सं0 वा0 का वृ0 इति0 आ0 बलदेव उपाध्याय, पृ0 193

(ख) गौ0 ध0 सू0 भूमि0, पृ0 13

6 आ0 ध0 सू0 प्रस्ता0 पृ0 14, ध0 शा0 का इति0, पृ0 12

7 वै0 सा0 और सं0 आ0 बलदेव उपाध्याय, पृ0 326

वसिष्ठधर्मसूत्र में भी गौतमधर्मसूत्र से ही सामग्री ग्रहण की।[1] मनुस्मृति में गौतम का उल्लेख किया गया है उन्हें उतथ्य का पुत्र बताया गया है।[2] याज्ञवल्क्य स्मृति में उन्हें धर्मशास्त्रकारों में गिनाया गया है। कठोपनिषद् में गौतम का प्रयोग नचिकेता तथा उसके पिता वाजश्रवस् के लिए हुआ है। छान्दोग्योपनिषद् में हारिद्रुम नाम के आचार्य का उल्लेख है।[3]

अथर्ववेद में भी गौतम का नाम आया है।[4] ऋग्वेद के ऋषि रहूगण गौतम हैं।[5] इनमें किसने धर्मसूत्र का प्रणयन किया यह बतलाना कठिन है।

सभी धर्मसूत्रों में गौतम का धर्मसूत्र सर्वाधिक प्रचलित है।[6] गौतम धर्मसूत्र में हिन्दू धर्म पर बौद्धों द्वारा किए गये आक्षेपों की ओर संकेत नहीं है।

गौतमधर्मसूत्र में तीन प्रश्न हैं। प्रथम और द्वितीय प्रश्न में नौ–नौ अध्याय व तृतीय प्रश्न में दस अध्याय हैं। कुल 28 अध्याय हैं। यह धर्मसूत्र विशाल ग्रन्थ है जिसमें सभी विषयों का वर्णन है।[7]

इसके कई संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं –

1. सर्वप्रथम डॉ0 ए0 एफ0 स्टेन्त्स्लर ने 'संस्कृत टेक्स्ट सोसायटी' के लिए लन्दन से 1876 ई0 में 'दि इंस्टीटयूट्स ऑफ गौतम नाम से प्रकाशित किया।
2. 1876 ई. में जीवानन्द विद्या सागर ने कलकत्ता से एक संस्करण प्रकाशित किया जिसमें 19 वें अध्याय के अन्त में 'कर्मविपाक' नामक प्रकरण जोड़ दिया।

---

1 ध0 शा0 का इति0, पृ0 13, वै0 सा0 और सं0, पृ0 326

2 मनु0 स्मृ0 3/16

3 छा0 उ0 4.4.3 कठ0 उ0 2.4.15, 2.5.6, 1.1.6

4 अथर्व0 4.2.9.6. तथा 18. 3. 16

5 ऋग्वेद 1.78.5

6 वै0 सा0 का इति0, कुवंर लाल जैन, पृ0 197

7 वै0 सा0 का इति0, कुवंर लाल जैन, पृ0 197

3. कलकत्ता से ही 1908 में एम0 एन0 दत्त ने एक संस्करण प्रकाशित कराया, इसमें भी कर्मविपाक जोड़ा गया।
4. 1879–1918 ई0 में स्मृति संदर्भ नामक चतुर्थ भाग में इसे कलकत्ता से प्रकाशित किया गया।
5. पूना से 1910 में आनन्द आश्रम ग्रन्थमाला के अन्तर्गत एक संस्करण निकला जो दोषपूर्ण था जिसे 1931 में पुनः हरदत्त की मिताक्षरासहित प्रकाशित किया। इसका अंग्रेज़ी अनुवाद बुहलर द्वारा मैसूर संस्करण में है।
6. एल0 श्री निवास आचार्य ने मस्करी की व्याख्या सहित 1916 ई0 में गवर्नमेण्ट ओरियण्टल लायब्रेरी मैसूर से प्रकाशित किया।
7. 1966 ई0 में काशी संस्कृत ग्रन्थमाला के अन्तर्गत चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस वाराणसी से हरदत्त की मिताक्षरा सहित गौतम धर्मसूत्र को प्रकाशित किया गया । जिसमें डॉ0 उमेश चन्द्र पाण्डेय कृत हिन्दी व्याख्या भी है।

आपस्तम्बधर्मसूत्र

यह धर्मसूत्र काफी प्रचलित है। इसका सम्बन्ध कृष्णयजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा से है। यह अध्वर्यु नामक ऋत्विज् के प्रमुख कल्प का अङ्ग है।[1] आपस्तम्बीय कल्पसूत्रों के समग्र संकलन में कुल तीस प्रश्न हैं। 28 वें तथा 29 वें प्रश्नों को आपस्तम्बधर्मसूत्र नाम से जाना जाता है। ये दोनों प्रश्न 11–11 पटलों में विभक्त हैं तथा 32 और 29 कण्डिकाओं में विभक्त हैं।[2]

---

1 आ0 ध0 सू0 प्रस्ता0 पृ0 27, ध0 शा0 इति0, पृ0 17

2 सं0 वा0 का वृ0 इति0, आ0 बलदेव उपाध्याय, पृ0 200

'चरणव्यूह ' के अनुसार खाण्डिकीय की पाँच शाखाओं में आपस्तम्ब शाखा भी एक थी। खाण्डिकीय तैत्तिरीय शाखा की एक उपशाखा में से थी। काल परिवर्तन की दृष्टि से आपस्तम्बीय शाखा हिरण्यकेशि शाखा से पूर्व की तथा बौधायन शाखा के पश्चात् की है।[1]

आपस्तम्ब आचार्य ही समस्त कल्पसूत्र के रचयिता थे। इस धर्मसूत्र में आपस्तम्ब ने अनेक धर्माचार्यों के प्रमाण दिए हैं। जैसे श्वेतकेतु, गौतम, हारीत कौत्स आदि।[2] इसमें प्रथम तीनों उच्चवर्णों के यज्ञ और उनके कर्त्तव्यों का वर्णन हुआ है। धर्म पक्ष से इसमें वैदिक विद्यार्थी और गृहस्थियों के विभिन्न कर्त्तव्यों का वर्णन हुआ है। इसमें विशेषतः भविष्यत्–पुराण का उल्लेख भी मिलता है। इसमें अध्यात्म और योग का वर्णन भी मिलता है।[3]

महामहोपाण्डुरंग वामन काणे के अनुसार धर्म और गृह्यसूत्र के एक ही प्रणेता है। व्यूह्लर तथा फूय्हरर्भी इस बात को मानते हैं।[4] इस धर्मसूत्र का सम्बन्ध दक्षिण भारत से प्रतीत होता है क्योंकि महार्णव के अनुसार नर्मदा के दक्षिण में आपस्तम्ब शाखा प्रचलित थी।[5]

स्वयं आपस्तम्ब ने ब्राह्मणों के हाथ पर जल गिराने की प्रथा वाली बात श्राद्ध प्रकरण में की है, जिससे स्वयं उनका दक्षिण भारतीय होने का परिचय जान पड़ता है। व्यूह्लर आपस्तम्ब को आन्ध्र प्रदेशीय मानते हैं।[6]

---

1 आ0 ध0 सू0 प्रस्ता0 पृ0 27 ध0 शा0 का इति0, पृ0 17

2 वै0 सा0 का इति0, कुवंर लाल जैन, पृ0 197

3 वै0 सा0 का इति0, कुवंर लाल जैन, पृ0 197

4 एस0 बी0 ई0 भाग–2 भूमि0 पृ0 13–15 स्मृतिचन्द्रिका 3, पृ0 458

5 "नर्मदा दक्षिण भागे आपस्तम्बाश्वलायनी।
राणायणी पिप्पला च यज्ञकन्याविभागिनः।।
माध्यन्दिनी शाङ्खयनी कौथुमी शौनकी तथा।।"
–चरणव्यूहमहार्णव की रचना, आ0 ध0 सू0 प्रस्ता0, पृ0 28

6 एस0 बी0 ई0 भाग 30 भूमि0, पृ0 34

एक प्रमाण से आपस्तम्ब उत्तर देशीय प्रतीत होते हैं। सीमन्त प्रकरण में वीणा गाने वालों को इन दो मन्त्रों के गाने का विधान किया गया था।[1]

'यौगन्धरिरेव नो राजति साल्वीरवादिषुः। विवृत्तचक्रा आसीनास्तीरेण यमुने ! तव।।[2]

सोम एव नो राजेत्याहुर्ब्राह्मणीः प्रजा।

विवृत्तचक्रा आसीनास्तीरेणासौ तव।।

साल्व देश वस्तुतः रावी नदी के पास था जो पंजाब का एक अंश था। अतः आपस्तम्ब निःसन्देह यमुना तथा साल्व जनपद से परिचित कोई उत्तर प्रदेशीय व्यक्ति था।[3]

प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध का विषय भी यही धर्मसूत्र है जिसका विषयगत वर्णन आगे किया जाएगा।

आपस्तम्बधर्मसूत्र का प्रकाशन चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी श्रीमद्धरदत्तमिश्र विरचित उज्ज्वला व्याख्या सहित हुआ है। इसके हिन्दी व्याख्याकार डॉ0 उमेश चन्द्र पाण्डेय हैं। इस धर्मसूत्र का चतुर्थ संस्करण वि0 संवत् 2056 सन् 1999 में प्रकाशित हुआ है।

हरदत्त की उज्ज्वला नामक टीका के साथ व्यूह्लर ने इसे बम्बई संस्कृत माला के अन्तर्गत सम्पादित किया। हरदत्त की सम्पूर्ण टीका के साथ कुम्भकोण में छपा है। जिसका भूमिका सहित ''सैक्रेड बुक्स ऑफ दि ईस्ट' जिल्द 2 में व्यूह्लर द्वारा अनुवाद प्रकाशित है।[4]

---

1 आ0 गृ0 सू0 14/3

2 वै0 सा0 और स0, आ0 बलदेव उपाध्याय', पृ0 328

3 द्रष्टव्य आ0 गृ0 सू0 प्रस्ता0, पृ0 5 काशी 1928,

4 ध0 शा0 इति0, पृ0 17

बौधायनधर्मसूत्र

इस धर्मसूत्र का सम्बन्ध कृष्ण यजुर्वेद से है। जिस प्रकार आपस्तम्ब शाखा के सम्पूर्ण कल्प साहित्य उपलब्ध है; उसी प्रकार बौधायन के भी सभी प्रकार के सूत्र उपलब्ध होने के संकेत मिलते हैं।[1] आपस्तम्ब और हिरण्यकेशि शाखाओं के समान बौधायन का सम्पूर्ण साहित्य इस समय सुरक्षित नहीं है। इस धर्मसूत्र के रचयिता बौधायन ने अपने मतों को कई जगह प्रकट किया है, जिससे इस धर्मसूत्र के रचयिता बौधायन ही हैं।[2] एक स्थान पर तर्पण के प्रंसग में काण्व बौधायन का भी उल्लेख है।[3] इनका दक्षिण भारतीय होना जान पड़ता है क्योंकि दक्षिण भारत के अनेक राजाओं ने बौधायन शाखा के ब्राह्मणों के नाम कई दान पत्र लिखे हैं।[4]

यह धर्मसूत्र चार प्रश्नों में है। प्रश्नों का विभाजन अध्याय तथा खण्डों में किया गया है। प्रथम प्रश्न में 11 अध्याय तथा 21 खण्ड है। द्वितीय प्रश्न में 10 अध्याय तथा 12 खण्ड हैं। तृतीय प्रश्न में 10 अध्याय तथा 10 ही खण्ड हैं। चतुर्थ प्रश्न में 8 अध्याय तथा 8 ही खण्ड हैं। 'इस प्रश्न का दशम अध्याय गौतमधर्मसूत्र से उद्धृत है तथा षष्ठ अध्याय विष्णुधर्मसूत्र के अड़तालीसवें अध्याय के तुल्य है। बौधायनधर्मसूत्र की शैली अन्य धर्मसूत्रों की अपेक्षा सरल है।[5]

बौधायनधर्मसूत्र में व्यक्ति के व्यक्तिगत एवं सामाजिक आचार तथा कर्त्तव्यों का विशद विवेचन किया यगा है। इस धर्मसूत्र में सभी वर्णों एवं आश्रमों के कर्त्तव्यों पर प्रकाश डाला गया है। बौधायनधर्मसूत्र में विवाह, दान, धर्म, पुण्य, दण्ड आदि का भी वर्णन किया है। बौधायन ने गृहस्थों के लिए पंच महायज्ञों का विधान किया है। अनेक प्रकार के

---

1 बौ0 ध0 सू0 प्रस्ता0, पृ0 22

2 बौ0 ध0 सू0 1.3.5.13, 1.4.6.9, 3.5.5.8,3.6.11• 2

3 काण्वं बौधायनं तर्पयामि, बौ0 ध0 सू0 2.5.9.14

4 बौ0 ध0 सू0 प्रस्ता0, पृ0 23

5 बौ0 ध0 सू0 प्रस्ता0, पृ0 24

प्रायश्चित्तों का तथा चान्द्रायण आदि व्रतों का भी विधान बौधायन ने किया है। इस सूत्र का सर्वप्रथम संस्करण डॉ0 ई0 हुल्श ने लीपजिंग से 1884 ई0 में प्रकाशित किया। 'सैक्रेड बुक्स ऑफ दि ईस्ट' भाग 14 में इसी संस्करण का व्यूह्लरकृत आङ्गल भाषानुवाद ऑक्सफोर्ड से प्रकाशित हुआ।

इसी का द्वितीय संस्करण 1965 ई0 में दिल्ली से प्रकाशित हुआ। मैसूर गवर्न्मेण्ट ओरियण्टल लाइब्रेरी से 1907 में एक संस्करण प्रकाशित हुआ। 1924 ई0 में सं0 सीरिज़ आफिस चौखम्बा वाराणसी से भी एक संस्करण प्रकाशित हुआ है। 1929 ई0 में पूना से एक संस्करण प्रकाशित हुआ। 1972 में चौखम्बा संस्कृत सीरिज़ वाराणसी से ही इसका द्वितीय संस्करण प्रकाशित हुआ है जिसका सम्पादन डॉ0 उमेश चन्द्र पाण्डेय ने किया है।

वासिष्ठधर्मसूत्र

महर्षि वसिष्ठ स्मृतिकारों में एकान्त उच्च स्थान पर प्रतिष्ठित धर्मसूत्रकार हैं, जिनका धर्मसूत्र स्वल्पकाय होने पर भी गुणों में विपुल तथा महनीय है। कुमारिल[1] तन्त्रवार्तिक में वसिष्ठ धर्मशास्त्र का सम्बन्ध ऋग्वेद से बताते हैं परन्तु यह प्रायोवाद है। जबकि ऋग्वेदियों के पास अपना धर्मसूत्र था ही नहीं, बल्कि स्वतन्त्र रूप से निर्मित इस धर्मसूत्र को स्वायत्त कर इसके ऊपर इन्होंने अपनी छाप लगा दी।'[2]

इसके प्रायश्चित्त प्रकरण 28वें अध्याय में जिस प्रकार ऋग्वेद के अस्यवामीय [3] हविष्यान्तीय[4] और अधमर्षण[5] सूक्त के मन्त्रों का उल्लेख किया गया है। उसी प्रकार

---

1 तन्त्रवार्तिक पृ0 179 कुमारिल भट्ट।

2 (क) वै0 सा0 और रसं0 आ0 बलदेव उपाध्याय, पृ0 329

(ख) ध0 शा0 का इति0, पृ0 21

3 ऋग्वेद 1.164.1–50

4 ऋग्वेद, 10.88.1–19

5 ऋग्वेद 10.190.1–3

तैत्तिरीय संहिता के भी अनेक मन्त्रों के निःसन्दिग्ध उद्धरण विद्यमान हैं। इसके परिणामस्वरूप ऋग्वेद के साथ मानने के पुष्ट प्रमाण नहीं है परन्तु मनुस्मृति के साथ इसके सम्बन्ध अधिक है।[1]

इसके आरम्भ के 14 अध्यायों में आचार का विस्तृत वर्णन है। अध्याय 15 से 19 तक व्यवहार वर्णन, 20 से 28 तक प्रायश्चित्त वर्णन व 29 से 30 तक दान का वर्णन है।[2] इस धर्मसूत्र में मनु का बहुत बार उल्लेख आया है। इसकी रचना गौतम धर्मसूत्र के बाद तथा मनुस्मृति से पहले मानी जाती है। इसके कई संस्करण हैं। जीवानन्द के संस्करण में 20 अध्याय हैं। वसिष्ठ धर्मसूत्र पर केवल एक ही व्याख्या प्रकाशित हुई है वह है कृष्ण पण्डित धर्माधिकारी की 'विद्वन्मोदिनी' व्याख्या। यह बनारस संस्करण में मुद्रित है। जीवानन्द के संस्करण वाली बात श्री एम0 एन0 दत्त कलकत्ता 1908 के संग्रह में भी है। आनन्दाश्रम स्मृति संग्रह 1905 तथा डॉ0 फयूहरर के संस्करण में 30 अध्याय हैं।[3] वसिष्ठ धर्मसूत्र के व्याख्याकार यज्ञस्वामी व डॉ0 फयूहरर द्वारा सम्पादित संस्करण सन् 1983 में बम्बई से प्रकाशित हो चुका है। 1904 में लाहौर से इसका हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशन हुआ है।

हिरण्यकेशिधर्मसूत्र[4]

इस धर्मसूत्र को सत्याषाढ़ धर्मसूत्र भी कहते हैं। यह हिरण्यकेशि कल्प के 26 वें व 27 वें प्रश्नों में है। इसकी प्रस्तुति स्वतन्त्र न होकर आपस्तम्ब के सैंकड़ों सूत्रों से ज्यों की त्यों मिलती है। दोनों में काफी समानता है। कोंगू राजाओं के एक दानपत्र में हिरण्यकेशि

---

1 वै0 सा0 का इति0 सं0, पृ0 329

2 वै0 सा0 का इति0, डॉ0 कुंवर लाल जैन, पृ0 198

3 ध0 शा0 का इति0, पृ0 21

4 वै0 सा0 और सं0, आ0 बलदेव उपाध्याय, पृ0 328

शाखा के ब्राह्मणों की चर्चा है। इस धर्मसूत्र पर महादेव दीक्षित की 'उज्ज्वला' वृत्ति उपलब्ध है। संभवतः अभी तक इसका कोई भी संस्करण प्रकाशित नहीं हो सका है।[1]

विष्णुधर्मसूत्र

यह धर्मसूत्र वैष्णव धर्मशास्त्र विष्णु स्मृति के रूप में प्रसिद्ध है। इसमें 100 अध्याय हैं किन्तु सूत्र छोटे हैं। पहला अध्याय और अन्त के दो अध्याय पद्य में हैं, शेष में गद्य पद्य का मिश्रण है। इसका सम्बन्ध यजुर्वेद की कठ शाखाओं से बताया गया है। इसमें भिन्न–भिन्न कालों के अंश दृष्टिगोचर होते हैं। इस धर्मसूत्र में भगवद्गीता, मनुस्मृति तथा याज्ञवल्क्य स्मृति से बहुत सी बातें ली गई हैं। विष्णु के गौरव से परिपूर्ण इस धर्मसूत्र पर पौराणिक आचार विचारों का पुष्कल प्रभाव है। इसके चार पाँच संस्करण इस समय उपलब्ध हैं। भारत में इस धर्मसूत्र का प्रकाशन कई बार हुआ।

1. जीवानन्द द्वारा 'धर्मशास्त्रसंग्रह' में 1876 ई0 में बंगाल एशियाटिक सोसाइटी द्वारा।
2. सन् 1881 में कलकत्ता से डॉ0 जूलियस जाली के द्वारा संपादित और अंग्रेजी में अनूदित तथा वैजयन्ती टीका सहित संस्करण।
3. श्री एम0 एन0 दत्त द्वारा 1909 में इसे संपादित किया गया ।
4. नन्द पण्डित द्वारा वाराणसी से 1622–23 ई0 में वैजयन्ती नामक टीका लिखा।

हारीतधर्मसूत्र

हारीतधर्मसूत्र का सम्बन्ध कृष्णयजुर्वेद से है।[2] आपस्तम्ब, बौधायन और वसिष्ठधर्मसूत्रों में हारीत को बार–बार उद्धृत किया गया है, किन्तु हारीतधर्मसूत्र का जो

1(क) सं0 वा0 का वृ0 इति0, पृ0 209

(ख) ध0 शा0 का इति0, पृ0 20

2 आ0 ध0 सू0 प्रस्ता0, पृ0 16

हस्तलेख उपलब्ध हुआ है और जिसका स्वरूप 30 अध्यायात्मक है, उसमें इनमें से बहुत से उद्धरण प्राप्त नहीं होते हैं।

नासिक जनपद के इस्लामापुर नामक स्थान पर हारीतधर्मसूत्र का एक हस्तलेख स्व0 पं0 वामन शास्त्री को मिला था जिसमें 30 अध्याय हैं। इसमें उद्धृतांश भी नहीं मिलते जिस पर काणे प्रभृति मनीषियों ने सन्देह व्यक्त किया है।[1] हारीत के एक सूत्र का अंश है "पालङ्कया–नालिका–पौतीक–शिग्रु–सृसुक–वार्ताक–भूस्तृण–कफेल्ल–माष–मसूर–कृतलवणानि च श्राद्धे न दद्यात्।"[2]

हारीतधर्मसूत्र का मूल स्रोत, उपकुर्वाण और नैष्ठिक संज्ञक द्विविध ब्रह्मचारी, स्नातक, गृहस्थ, आरण्यक, संन्यासी, भक्ष्याभक्ष्य, आशौच, श्राद्ध, राजकर्म, शासन विधि स्त्रियों के कर्त्तव्य प्रायश्चित्त आदि विविध विषयों का वर्णन है।

वैखानसधर्मसूत्र

इस धर्मसूत्र में तीन प्रश्न हैं जिनका विभाजन 51 खण्डों में है। इनमें 365 सूत्र मिलते हैं। प्रवर खण्ड के 68 सूत्र इनसे पृथक् हैं। प्रथम प्रश्न में चारों वर्णों और आश्रमों के अधिकारों का तथा कर्त्तव्यों का निरूपण है।

द्वितीय प्रश्न में वानप्रस्थियों से सम्बद्ध अग्नि का विवरण, संन्यासी के कर्त्तव्य तथा आचारों का विधान है। तृतीय प्रश्न में गृहस्थ के नियम, निषिद्ध वस्तुएं तथा कृत्य संन्यासी के धर्म तथा संन्यासी की मृत्यु पर नारायणबलि, तर्पण, विष्णु के नाम से विहित जातियां, व्रात्य चार प्रकार के ब्रह्मचारियों का वर्णन आदि है। इसमें योग के आठ अंगों का

---

1 (क) स0 वा0 का वृ0 इति0, पृ0 208

(ख) ध0 शा0 का इति0, पृ0 25

2 वही ।

तथा आयुर्वेद के आठ अंगों का वर्णन है। इसकी रचना अर्वाचीन लगती है तथा भाषा लौकिक संस्कृत है।[1] अभी तक इस पर कोई व्याख्या उपलब्ध नहीं हुई है।[2]

इसका प्रथम संस्करण 1913 में, तिरुअनन्तपुरम (त्रिवेन्द्रम) से टी0 गणपति शास्त्री द्वारा सम्पादित एवं प्रकाशित किया गया है।

द्वितीय संस्करण डॉ0 कालन्द के द्वारा सम्पादित तथा अंग्रेजी में अनूदित बिब्लियोथिका इण्डिका, कलकत्ता से सन् 1927 में दो भागों में प्रकाशित संस्करण।[3]

शंखलिखित धर्मसूत्र

यह धर्मसूत्र शुक्लयजुर्वेद की वाजसनेयिशाखा का धर्मसूत्र था इसका पता तन्त्रवार्तिक में वर्णित अनुष्टुप् छन्द वाले श्लोकों से चलता है। तन्त्रवार्तिक में इस धर्मसूत्र से इन श्लोकों को उधृत किया गया है।[4] याज्ञवल्क्य ने शंख –लिखित को धर्म शास्त्रकारों में गिना है।[5] पाराशर ने पराशरस्मृति[6] में शंखलिखित का उल्लेख किया है।

जीवानन्द के स्मृति संग्रह में इस धर्मसूत्र के 18 अध्याय हैं और शंख स्मृति के 330 तथा लिखित स्मृति के 93 श्लोक पाये जाते हैं। यही बात आनन्दाश्रम (पूना) के संग्रह में भी पायी जाती है। मिताक्षरा में इसके 50 श्लोक उद्धृत हैं।[7] इस धर्मसूत्र के गद्यांशों में वेदाङ्गों, सांख्य, योग, धर्मशास्त्र आदि की ओर सङ्केत मिलता है।

---

1 सं0 वा0 का वृ0 इति0, आ0 बलदेव उपाध्याय, पृ0 210

2 सं0 वा0 का वृ0 इति0, आ0 बलदेव उपाध्याय, पृ0 210

3 सं0 वा0 का वृ0 इति0, आ0 बलदेव उपाध्याय, पृ0 210

4 ध0 शा0 का इति0, पृ0 26

5 ध0 शा0 का इति0, पृ0 26

6 परा0 स्मृ0, 1.24

7 आ0 ध0 सू0 प्रस्ता0, पृ0 16

यह धर्मसूत्र गौतम एवं आपस्तम्ब के काल के बाद की, किन्तु याज्ञवल्क्य स्मृति से पहले की रचना है। इसके प्रणयन का काल ई0 पू0 300 से 100 ई0 के बीच है।[1]

अन्य धर्मसूत्रकार

इन धर्मसूत्रों के अतिरिक्त बहुसंख्यक धर्मसूत्रों के अस्तित्व का ज्ञान होता है। इनमें कश्यप अथवा काश्यप, देवल पैठीनसि, बृहस्पति, भारद्वाजसुमन्तु कण्व एवं काण्व, जातूकर्ण्य, गार्ग्य और च्यवन, भरद्वाज एवं भारद्वाज, शातातप आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।[2] इनके धर्मसूत्र धर्म–विषयक ग्रन्थों में विकीर्ण हैं। इनकी अलग से कोई प्राप्ति नहीं होती न कोई प्रकाशन हुआ है।

आपस्तम्बधर्मसूत्र काल एवं वर्ण्य विषय

आपस्तम्ब के काल–निर्धारण में विद्वानों में कई प्रकार की धारणाएं हैं। जैसे– आपस्तम्बधर्मसूत्र में 'अवराः' के उदाहरण के रूप में श्वेतकेतु का उल्लेख किया गया है। उससे प्रतीत होता है कि वे आपस्तम्ब से बहुत पहले के नहीं हैं। श्वेतकेतु और राजा जनक की कथा शतपथ ब्राह्मण में आयी है।[3] यदि आपस्तम्ब के श्वेतकेतु को शतपथ ब्राह्मण वाले श्वेतकेतु से अभिन्न माना जाये तो आपस्तम्ब शतपथ ब्राह्मण से एक या दो शताब्दी बाद रहे होंगे। प्रो0 काणे ने छान्दोग्योपनिषद् में दो श्वेतकेतु की ओर ध्यान दिया है। जिससे आपस्तम्ब द्वारा लिखित श्वेतकेतु शतपथ ब्राह्मण वाले नहीं अपितु एक धर्मसूत्रकार हैं।[4]

---

1 ध0 शा0 का इति0, पृ0 27

2 सं0 वा0 का वृ0 इति0, पृ0 211

3 श्वेतकेतुर्हारूणेयः। यक्ष्यमाणऽआसतꣳह पितोवाचकानृत्विजोऽवृथाऽइति सहोवाचायंन्वेवमे–इत्यादि शतपथब्राह्मणे का0 10.3.4.1, पृ0 1390

4 "ॐ श्वेतकेतुर्हारुणेय आस। तंह पितोवाच श्वेतकेतो वस ब्रह्मचर्यम्।
न वै सौम्यास्मत कुलीनोऽननूच्य ब्रह्मबन्धुरिव भवतीति।। छा0 उ0 6.8.1.1

शंकराचार्य ने ब्रह्मसूत्र के भाष्य में आपस्तम्ब को उद्धृत किया है।[1]

पुराण का उल्लेख आपस्तम्ब के सिवाय किसी सूत्रकार ने नहीं किया है।[2]

आपस्तम्ब में भविष्य पुराण का नामतः उल्लेख है।[3] आपस्तम्ब का परिचय महाभारत से भी मिलता है जैसा कि म0 म0 काणे ने बताया है। "सम्भोजनी नाम पिशाच भिक्षा नैषा पितॄन् गच्छति नोऽथ देवान्।"[4]

अपाणिनीय प्रयोग इस धर्मसूत्र में इतनी अधिक संख्या में मिलते हैं कि विद्वानों ने दो प्रकार की धारणाएं मानी हैं। पहली यह कि आपस्तम्ब पाणिनि से परिचित नही थे उनके समकालीन थे या उनसे पूर्ववर्ती थे। दूसरी यह कि आपस्तम्ब के धर्मसूत्र में मौलिक पाठ में और भी अधिक असंगतियाँ रही होगी।

प्रो0 काणे के शब्दों में यथा [5] –

This makes it probable that in the original text there must have been many more unpaneanforms than in the one preserved by Haradatta"

आपस्तम्बधर्मसूत्र गौतम और बौधायन के बाद का है किन्तु हिरण्यकेशिधर्मसूत्र से पहले का है। वेद वेदाङ्गों का इसमें वर्णन पढ़ने से यह सभी वेद वेदाङ्गों के बाद की रचना है, ऐसा प्रतीत होता है। अपाणिनीय प्रयोगों से यह मालूम पड़ता है कि यह पाणिनि के दक्षिण भारत में प्रचार होने से पूर्व की रचना है। यह उस समय की रचना है जब जैमिनि ने अपने दार्शनिक सम्प्रदाय की स्थापना की थी। यह पतञ्जलि से पहले की रचना है। भाषा की दृष्टि से तथा श्वेतकेतु के सम्बन्ध पर ध्यान देते हुए व्यूह्लेर ने यह विचार प्रकट

---

1 नाऽत्यन्तमन्ववस्येत् आ0 ध0 सू0 1.7.20.3, ब्रह्म सू0 4.2.14

2 योहिंसार्थमभिक्रान्तं हन्ति. . . . इति पुराणे। आ0 ध0 सू0 1.10. 29.7 भविष्य पुराण 145 –46

3 पुनस्सर्गे बीजार्था भवन्तीति भविष्य पुराणे। आ0 ध0 सू0 2. 9. 24. 6

4 आ0 ध0 सू0 2.7.17.8

5 हिस्ट्री ऑफ धर्म शास्त्र, पृ0 37

किया कि इस धर्मसूत्र को तृतीय शताब्दी ई0 पू0 के बाद का नहीं बल्कि इसकी रचना 150–200 वर्ष पूर्व मानना उचित है।[1]

महामहोपाध्याय पी0 वी0 काणे ने इस धर्मसूत्र के लिए 600–300 ई0 पू0 के बीच का समय मानना उचित ठहराया है।[2]

आपस्तम्बधर्मसूत्र के वर्ण्य–विषयों का संक्षेपतः वर्णन इस प्रकार है–

यह धर्मसूत्र दो प्रश्नों में विभक्त है जिनमें 11 पटल हैं तथा दोनों पटलों में क्रमशः 32 और 29 कण्डिकाएं हैं और एक ही विषय बिना व्यवधान के कई कण्डिकाओं में विवेचित है जिसका विवरण एवं है –

प्रथम प्रश्न में धर्म के प्रमाण, चातुर्वर्ण्य, उपनयन का वर्णानुसार समय विवेचन, उपयुक्त समय पर उपनयन न करने पर प्रायश्चित्त, ब्रह्मचारी के संस्कार 48, 36, 25 तथा 12 वर्ष का ब्रह्मचर्य, दण्ड, अजिन और मेखला आदि तथा भिक्षा के नियम, समिधानयन ब्रह्मचारी के व्रत, स्नातक के धर्म, अनध्याय, स्वाध्याय की विधि, पञ्च महायज्ञ, वर्णानुसार कुशल क्षेम पूछने के नियम, नित्यकर्म, अभिवादन की विधि एवं अभिवादन योग्य व्यक्ति, भक्ष्याभक्ष्य विचार, आचमन की विधि–ब्राह्मण को वणिक् व्यापार का निषेध, अध्यात्म चर्चा, अशुचिकर कर्म, आत्मज्ञान के उपाय, क्षत्रिय के वध का प्रायश्चित्त, ब्रह्महत्या का प्रायश्चित्त, सुरापान तथा गुरुपत्नीगमन का प्रायश्चित्त, स्वर्ण स्तेय का प्रायश्चित्त, अभिशस्त का प्रायश्चित्त, विविध स्नातकों के व्रत आदि विषयों का वर्णन है।

द्वितीय प्रश्न में पाणिग्रहण के साथ गृहस्थ धर्म का प्रारम्भ, गृहस्थ के लिए भोजन और उपवास, स्त्रीगमन आदि के नियम, विभिन्न वर्णों से सम्बन्धित कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य, सिद्ध अन्न की बलि, अतिथि सत्कार, ब्राह्मण गुरु के अभाव में ब्राह्मण का क्षत्रिय या वैश्य गुरु से शिक्षा ग्रहण, मधुपर्क के नियम, राजपुरोहित के गुण अपराध के अनुरूप दण्ड

---

1 हिस्ट्री ऑफ धर्म शास्त्र, पृ0 43

2 हिस्ट्री ऑफ धर्म शास्त्र, पृ0 45

विधान, मार्ग में चलने के नियम, युद्ध के नियम, धर्म और अधर्म के परिणामस्वरूप उत्थान और पतन, षड्विध विवाह, पिता का निर्णय, पिता के जीवित रहते पैतृक सम्पत्ति का समविभाजन, पागलों, नपुंसकों तथा पापियों को सम्पत्ति के अधिकार का निषेध, ज्येष्ठ पुत्र को अधिक सम्पत्ति प्रदान करने की अवैदिकता, पति–पत्नी के बीच सम्पत्ति विभाजन का निषेध, सम्बन्धियों तथा सगोत्रियों की मृत्यु पर आशौच विचार। श्राद्ध में भक्ष्याभक्ष्य का विचार।

श्राद्ध–भोजी–ब्राह्मण के लक्षण, आश्रम–व्यवस्था, सन्यासी और वानप्रस्थ के नियम, नृप के कर्त्तव्य, परस्त्रीगमन के लिए विहित प्रायश्चित्तकृत्य, दण्ड का विधान, आचार नियमों का उल्लंघन करने पर दण्ड, विवादों का निर्णय, मिथ्या साक्ष्य का दण्ड, स्त्रियों तथा शूद्रों के ग्रहण करने योग्य धर्म।

आपस्तम्बधर्मसूत्र एक ऐसा सूत्र है, जो मीमांसा के विभिन्न सिद्धान्तों तथा पारिभाषिक शब्दों से भरा है।" यथा श्रुतिर्हि बलीयस्यानुमानिकादाचारात्[1] विरोधे त्वनपेक्ष्यं स्यादस्ति ह्यनुमानम्[2]। अङ्गानां तु प्रधानैरव्यपदेश इति न्यायवित्समयः।[3] अथापिनित्यानुवादमविधिमाहुर्न्यायविदः[4] अर्थवादो वा विधिशेषत्वात् तस्मान्नित्यानुवादः।[5] इसके प्रथम प्रश्न में ब्रह्मचारी और स्नातक से सम्बद्ध नियम दिए गए हैं और दूसरे प्रश्न में गृहस्थ, संन्यासी और वानप्रस्थ के धर्मों का विवेचन किया गया है। कण्डिकाओं में विषयानुसार विभाजन नहीं है और न ही कोई विषय एकत्र समाप्त कर दिया गया है अपितु एक ही विषय लगातार एकाधिक कण्डिकाओं में चलता रहता है। बीच–बीच में दूसरे विषय से सम्बद्ध नियम भी विवेचित हुए हैं।

आपस्तम्बधर्मसूत्र की सबसे प्रधान विशेषता इसकी भाषा है वस्तुतः यह इस दृष्टि से भी धर्मसूत्रों से विलक्षण है तथा इसकी शैली गद्य में है।[6]

---

1 आ0 ध0 सू0, 1.1.4.8

2 पू0 मी0 1.3.3

3 आ0 ध0 सू0 2.4.8.13 तथा पू0 मी0 1.3.11–14

4 आ0 ध0 सू0 2.6.14.23

5 पू0 मी0 6.7.3

6 आ0 ध0 सू0 पृ0 34 चतुर्थ संस्करण प्रकाशक चौखम्बा संस्कृत संस्थान वाराणसी संवत् 2056